सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा ।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा ॥

वर्ष ५ } मथुरा, १ जून सन् १९४४ ई० { अंक ६

जीवन-पथ पर

[रचयिता—श्री० महावीर प्रसाद विद्यार्थी; टेढ़ा-उन्नाव]

मैं पथ पर बढ़ता जाता हूं !
मैं मरु-प्रदेश के कण-कण में सुख का संसार बसाता हूं !
मेरे अधरों पर झलक रही है ऊषा की मुसकान मधुर,
नवनीत-समान सुकोमल है, पर कठिन कुलिश-सा मेरा उर;
हँस-हँस पीता विष का प्याला, माधुरी सुधा की पाता हूं !
मैं पथ पर बढ़ता जाता हूं !
कितने सुन्दर ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़, अनगढ़ टीले,
झाड़ियाँ कँटीली, बीहड़ बन, पथ पर प्रदेश वे बरफ़ीले;
छूकर मैं अपने हाथों से शूलों को फूल बनाता हूं !
मैं पथ पर बढ़ता जाता हूं !
मेरे चरणों पर लोट रही हैं मुक्ता-मणियों की लड़ियाँ,
कब बाँध सकीं मेरे मन को ये विषम बन्धनों की कड़ियाँ;
अनजान किसी के इङ्गित पर मैं झूम-झूम कर गाता हूं !
मैं पथ पर बढ़ता जाता हूं !

उतर स्वर्गसे भूमंडल पर, सत् की अमर ज्योति आती है
वेणु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है

मथुरा १ जून सन् १६४४ ई०

धर्म का सच्चा स्वरूप

धर्म वह वस्तु है जिसकी रक्षा करने से हमारी रक्षा होती है। "धर्मे रक्षति रक्षतः" का सिद्धान्त ही सत्य है। मनुष्य बड़ा स्वार्थी जीव है उसने हर दिशा में पहले यह देखा है कि इस कार्य को करने से मेरा कितना हित होगा, तत्पश्चात् उस कार्य को आरम्भ किया है। गाय, भेंस, घोड़े, बकरी आदि की वह रक्षा करता है क्योंकि बदले में वह भी मनुष्य की सम्पत्ति तथा तन्दुरुस्ती की रक्षा करते हैं—बढ़ाते हैं। सियार, भेड़िया, हिरन, लोमड़ी, चीता, कछुआ आदि को आम तौर से नहीं पाला जाता क्योंकि इनकी रक्षा करने से मनुष्य की रक्षा नहीं होती। यही बात हर दिशा में है व्यापार, विवाह, मित्रता, कुटुम्ब पालन, विद्या-व्यायाम आदि को इसलिए उचित ठहराया गया है कि इनके द्वारा मनुष्य का हित साधन होता है, रक्षा होती है, सुख मिलता है। जिस कार्य से किसी अच्छे प्रतिफल की आशा नहीं होती उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेता।

धर्म को मनुष्य ने बहुत बड़ी वस्तु माना है। छोटे मोटे सुखों का त्याग कर और कष्टों को अपना कर भी वह धर्म के लिए प्रयत्नशील रहता है क्योंकि लाखों वर्षों का अनुभव यह सिखाता है कि धर्म की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है। रक्षक, पहरेदार, चौकीदार, सैनिक आदि रक्षा करने वाले व्यक्तियों को पैसा खर्च करके भी अपने पास रखा करते हैं क्योंकि यह बात अनुभव में आ चुकी है कि इनके द्वारा आने वाली आपत्तियों और हानियों से बचाव होता है। यदि यह बात न होती तो कोई भी पहरेदारों को न रखता। इसी प्रकार धर्म को भली भांति परख लिया गया है कि वह हमारी रक्षा करता है, इसीलिए लोग धर्म की रक्षा करना उचित समझते हैं। यदि उसमें यह गुण न होता तो कोई उसे स्वीकार न करता।

गौ पालन, तुलसी स्थापना, गङ्गा स्नान, तीर्थ यात्रा, एकादशी व्रत, ब्रह्मचर्य आदि कार्यों को धर्म माना गया है। इस मान्यता से पहले परीक्षा करली गई है कि यह कार्य लाभदायक हैं। गाय पालन से दूध, गोबर और बछड़े मिलते हैं तुलसी, अनेक रोगों को दूर करने वाली एक अमोघ औषधि है। गङ्गा के जल में ऐसे रसायनिक तत्व पाये जाते हैं जो स्वास्थ्य सुधार के लिए उपयोगी हैं। तीर्थ यात्रा में देशाटन के अनुभव, सत्पुरुषों का सत्सङ्ग और वायु परिवर्तन होता है। एकादशी व्रत रखने पन्द्रह दिन का कब्ज पच जाता है। ब्रह्मचर्य से शरीर बलवान रहता है। इन प्रत्यक्ष लाभों की आकर्षण शक्ति ने ही मनुष्य को धर्म के साथ बांध रखा है, अन्यथा यह स्वार्थी जीव कब का धर्म को धता बता चुका होता।

जहाँ श्रेष्ठता होती है वहाँ कुछ बुराई भी घुस जाती है। धर्म पालन को लोग बहुत ही महत्वपूर्ण समझते हैं और उसके लिए त्याग भी करते हैं यह देखकर स्वार्थ परता—जो कि हर एक क्षेत्र में पाई जाती है—जागृति हुई। और अनुचित रूप से व्यक्तिगत लाभ उठाने के आडम्बर रचे गये। धर्म गुरुओं में जहाँ अधिकांश श्रेष्ठ पुरुष थे और रक्षा करने वाले धर्म का उपदेश दिया करते थे, वहाँ कुछ ऐसे ओछी मनोवृत्ति के लोग भी गुरुओं में मिल गये जिन्होंने व्यक्तिगत लाभ की

प्रेरणासे नकली बातोंको धर्ममें जोड़दिया। कालान्तर में वह असली और नकली बातें एक दूसरे के साथ मिलकर ऐसी शक्ल में आ गईं आज यह पहचानने में कठिनाई होती है कि हमारे सामने धर्म का जो स्वरूप उपस्थित है उसमें कितनी बातें असली और कितनी नकली हैं?

इस असली नकली के संमिश्रण के कारण परिस्थिति ऐसी बन गई है कि धर्म के नाम पर जो कार्य किये जाते हैं उनमें से बहुत से पुण्य और बहुत से पाप होते हैं। आज नकली की मात्रा असली से अधिक होगई है इसलिए धर्म के नाम पर जो कुछ किया जाता है उसमें पुण्य का भाग कम और पाप का अधिक होता है। धर्म के निमित्त जो कुछ जमा करते हैं वह फूटे पैंदे के घड़े में होकर नीचे बह जाता है। फलतः अपनी सम्पूर्ण शक्ति का पांचवां हिस्सा धर्म के लिए खर्च करते हुए भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होती, लाभ के बदले उलटी हानि दिखाई पड़ती है।

धर्म के नाम पर पलने वाले व्यक्ति और धर्म के नाम पर चलने वाले संस्थानों के कार्यों पर जब हम गंभीर दृष्टिपात करते हैं तो उनके द्वारा उन्नति की बजाय अवनति के तत्व अधिक दिखाई पड़ते हैं। धर्म जिनकी घर गृहस्थी का पूरा पूरा खर्च चलाता है उनसे यह भी आशा करता है कि बदले में वे लोक हित की साधना करें। जनता जिन लोगों का पेट पालती है, जिनके जीवन की रक्षा करती है उन्हें भी उचित है कि बदले में जनता की रक्षा का कार्य करें, यही तो धर्म है। नौकरी और दान में यह अन्तर है कि नौकर तो जितने पैसे लेता है उतना ही काम करके छुट्टी पा जाता है परन्तु दान लेने वाली की जिम्मेदारी अनेक गुनी है क्यों कि उसने पैसे के अतिरिक्त श्रद्धा को भी प्राप्त किया है इसलिये उसे नौकरी की अपेक्षा कई गुना अधिक काम करके धर्म की मर्यादा की रक्षा करनी है। इसी प्रकार धर्मके नाम पर चलने वाली संस्थाओं का कर्तव्य है कि यजमानों के हित साधन के लिए प्राप्त पैसे की अपेक्षा अनेक गुना काम करके दिखावें। परन्तु हम देखते हैं कि धर्म के नाम पर चलने वाले व्यक्ति और संस्थान दोनों ही इस कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त खरे नहीं उतरते। नकली कामों का फल भी नकली ही होगा।

इस युग की शिकायत है कि "हमारी पंचमांश शक्ति को धर्म खा जाता है परन्तु बदले में झूठी कल्पनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं देता।" इस शिकायत के उत्तर में हमारा कथन है कि आप जिसको अपनी शक्तियाँ सोंप रहे हैं वह धर्म नहीं है। क्योंकि धर्म एक प्रकार की उर्वरा भूमि है जिसमें बोयाहुआ बीज कई गुना होकरलौटताहै। धर्म में 'नकद' होने की विशेषता है। इस हाथ लेकर उस हाथ देने का उसमें स्वाभाविक गुण है। जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी अवश्यमेव रक्षा करता है। यदि किसी प्रकार का प्रत्युत्तर, प्रत्युकार, प्राप्त न हो तो समझना चाहिये यह नकली चीज है। जिसमें न तो गर्मी हो न चमक वह अग्नि नहीं कही जा सकती है। इसी प्रकार रक्षा करने पर भी जो न तो सुख में वृद्धि करता है और न आपत्तियों से रक्षा करता है वह धर्म नहीं है। यदि हम लोग वास्तविक धर्म की उपासना करते होते तो आज पतित, पराधीन, क्षुधार्त, बीमार, बेकार और तरह तरह से दीन हीन न होते। धर्म के साधक की यह दुर्गति तीन काल में भी नहीं होती। बहुत कुछ खोने के पश्चात् बहुत कुछ ठोकरें खाने पश्चात् अब हमें होश में आना होगा और उस वास्तविक धर्म को ढूंढना होगा जिसकी शरण में जाने से मनुष्य की सब प्रकार की आधि व्याधि मिट जाती है, सब प्रकार के क्लेश कष्टों से छुटकारा मिल जाता है।

धर्म और अधर्म की व्यवस्था करते हुए पंचा-ध्यायी में एक बहुत महत्व पूर्ण श्लोक कहा गया है—

शक्तिः पुण्यं पुण्य फलं सम्पच्च सम्पदः सुखम्।
अतोहि वयनं शक्तेर्यतो धर्मः सुखावहः॥

अर्थ-शक्ति पुण्य है, पुण्य का फल वैभव है

और वैभव से सुख प्राप्त होता है। इसलिए निश्चय से शक्ति का संचय सुखकारक धर्म माना गया है।

उपरोक्त श्लोक में सच्चे धर्म का असली मर्म खोलकर रख दिया गया है। जिससे अपनी-अपने समाज की शक्ति बढ़ती है वह धर्म है। विद्या, स्वास्थ्य, धन, प्रतिष्ठा, पवित्रता, संगठन, सच्चरित्रता यह सात महाबल माने गये हैं, जिन कार्यों से इन सात मार्गों में अपनी या अपने समाज की उन्नति होती हो धर्म साधना के निमित्त उन्हीं कार्यों को करना अपनाना चाहिए। स्वयं इन सातों बलों को अपने पास एकत्रित करना धर्म कर्तव्य समझ कर सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए और महा सम्पत्तियाँ दूसरों को भी प्राप्त हों इसके लिए परोपकार भावना के साथ उद्योग करना चाहिए। ऐसी सभा संस्थाओं का स्थापन संचालन और सहयोग करना चाहिए जो स्वास्थ्य की उन्नति करती हो, जिनके द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती हो, आर्थिक दशा सुधरती हो, गंदगी, मलीनता, कुरुचि हटती हो, मेल, ऐक्य-भ्रातृभाव बढ़ता हो तथा सद्गुणों में सदाचार में न्याय में उन्नति होती हो। बलों की वृद्धि करना ही धर्म साधना का प्रधान कार्य है। रक्षा करने का एक मात्र हथियार 'बल' है। धर्म का गुण रक्षा करना माना गया है। इसलिए वे ही कार्य धर्म ठहराये जा सकते हैं जिनके द्वारा हमारा व्यक्तिगत और सामूहिक बल बढ़ता हो, उन्नति होती हो, सुख बढ़ता हो और आत्म रक्षा की क्षमता प्राप्त होती हो।

जो व्यक्ति उपरोक्त प्रकार के कामों में जितने परिश्रम और लगन के साथ जुटे हुए हों उन्हें उतना ही बड़ा धर्मात्मा मानना चाहिए। इसी तरह के व्यक्तियों को और कार्यों को बढ़ाने के लिए अपना प्रभाव समय और पैसा लगाना चाहिए। वास्तविक धर्म यही है। इसी मर्यादा में वे लोग भी आजाते हैं जो किसी विपत्ति में फँस गये हैं अपाहिज, असमर्थ, बालक, वृद्ध आदि ऐसे लोग जो अपनी शक्ति से अपना जीवन यापन स्वयं नहीं कर सकते तथा ऐसे लोग जो आकस्मिक विपत्ति में पड़ गये हैं जैसे बाढ़ अकाल, अग्निकाण्ड, चोट, दुर्घटना, रोग, अन्याय, आदि के सताये हुए। इन असमर्थों और पीड़ितों की सहायता करना भी मनुष्य का कर्तव्य है, ऐसे कर्तव्य पालन को दयाधर्म कहते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि अपनी उदारता से कहीं निठल्ले, बदमाश और ढोंगियों को सहायता न मिलती हो ऐसे लोगों की सहायता करना उनके निठल्लेपन, बदमाशी और ढोंग को और अधिक प्रोत्साहन देना है जो कि एक प्रकार का पाप ही है। ऐसी सहायता देने वाले को उलटा पाप लगता है। भिक्षा एवं दान के ऊपर जीवन निर्वाह करने का अधिकार अपाहिजों और लोक सेवी व्यक्तियों को है, पीड़ितों को उतनी मात्रा में सहायता लेने का हक है जिससे वे फिर अपने पांवों पर खड़े होजावें। इसके अतिरिक्त और किसी को भी न भिक्षा लेनी चाहिए और देनी चाहिए। ईश्वर भजन व्यक्तिगत आवश्यकता है, जैसे भोजन करना, पानी पीना, स्नान करना आदि। कोई आदमी इसलिए भिक्षा नहीं माँगता कि मैं भोजन करता हूं, पानी पीता हूँ, स्नान करता हूं, शौच जाता हूं, यह तो हर आदमी के दैनिक कर्तव्य है जिन्हें करने के लिए किसी पर अहसान जताने की या धर्मात्मा बनने की जरूरत नहीं पड़ती। कोई व्यक्ति अधिक समय तक भजन करता है, अधिक ईश्वर भक्त है तो यह इसकी व्यक्तिगत महत्ता है, उसका अपना निजी लाभ है। निजी लाभ को स्वर्ग मुक्ति को कमाने में लगे हुए व्यक्ति दान या भिक्षा की आशा क्यों करें?

हमें सच्चे धर्म को पहचानने की और उसी की रक्षा करने की आवश्यकता है जिससे हमारी भी रक्षा हो। अज्ञान और आडम्बर के पर्दे को हटा कर हमें भगवान सत्य के दर्शन करने चाहिए। सत्य का अवलम्बन करने में ही धर्म है और धर्म के ऊपर ही हमारी वैयक्तिक एवं सामूहिक उन्नति तथा रक्षा निर्भर है। अपनी पंचमाश शक्ति का जिस दिन हम सच्चे धर्म के लिए उपयोग करने लगेंगे उसी दिन से हमारे सौभाग्य सूर्य का उदय होना आरम्भ होजायगा।

सहृदयता में जीवन की सार्थकता।

रूखापन, जीवन का सबसे बड़ा दुश्मन है। कई आदमियों का स्वभाव बड़ा नीरस, रूखा, शुष्क, निष्ठुर, कठोर और अनुदार होता है। उनका आत्मीयता का दायरा बहुत ही छोटा और संकुचित होता है। उस दायरे से बाहर के व्यक्तियों तथा पदार्थों में उन्हें कुछ दिलचस्पी नहीं होती, किसी की हानिलाभ, उन्नति अवनति, खुशी रंज, अच्छाई बुराई से उन्हें कुछ मतलब नहीं होता। अपने अत्यन्त ही छोटे दायरे में स्त्री, पुत्र, तिजोरी, मोटर, मकान आदि में उन्हें थोड़ा रस जरूर होता है बाकी की अन्य वस्तुओं के प्रति उनके मन में बहुत ही अनुदारता पूर्ण रुखाई होती है। कोई कोई तो इतने कंजूस होते हैं कि अपने शरीर के अतिरिक्त अपनी छाया पर भी उदारता या कृपा नहीं दिखाना चाहते। इससे भी महा कंजूस इतने बड़े चढ़े होते हैं कि ये कंजूसी में ही तन्मय होजाते हैं, आत्मा के साथ कृपा करना तो दूर, शरीर के साथ में भी उदारता दिखाना नहीं चाहते। अच्छे भोजन, अच्छे वस्त्र, अच्छे मकान आदि आवश्यक वस्तुओं में भी आवश्यकता से अधिक कठोरता करते हैं। ऐसे रूखे आदमी यह समझ ही नहीं सकते कि मनुष्य जीवन में कोई आनन्द भी है, अपने रूखेपन के प्रत्युत्तर में दुनियां उन्हें बड़ी रूखी, नीरस, कर्कश, खुदगर्ज, कठोर और कुरुप मालूम पड़ती है।

रूखापन जीवन की बड़ी भारी कुरूपता है। रूखी रोटी में क्या मजा है, रूखे बाल कैसे खराब लगते हैं, रूखी मशीन में बड़ी आवाज होती है और पुर्जे जल्दी ही टूट जाते हैं। रूखे रेगिस्तान में जहां रेत का सूखा हुआ समुद्र पड़ा है कौन रहना पसंद करेगा। वैसे तो प्राणिमात्र ही विशेष रूप से ऐसे तत्वों से निर्मित है जिसके लिए सरसता की, स्निग्धता की, आवश्यकता है मनुष्य का अन्तःकरण रसिक है, कवि है, भावुक है, सौन्दर्य उपासक है, कला प्रिय है, प्रेम मय है। 'हृदय का यही गुण है, सहृदयता का अर्थ कोमलता, मधुरता, आर्द्रता है जिसमें यह गुण नहीं उसे हृदय हीन कहा जाता है। हृदय हीन का तात्पर्य है जड़-पशुओं से भी नीचा। नीतिकार का कथन है कि "संगीत साहित्य कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाण हीनः" इस उक्ति में कला विहीन—नीरस मनुष्य को पशुओं से भी नीचा ठहराया गया है क्योंकि पशुओं में तो सींग पूछ की दो विशेषताएं तब भी हैं उस मनुष्य में तो इनका भी अभाव है।

जिसने अपनी विचार धारा और भावनाओं को शुष्क, नीरस और कठोर बना रखा है, वह मानव जीवन के वास्तविक रस का आस्वादन करने से वंचित ही रहेगा। उस बेचारे ने व्यर्थ ही जीवन धारण किया और वृथा ही मनुष्य शरीर को कलंकित किया। आनन्द का स्रोत सरसता की अनुभूतियों में है। परमात्मा को आनन्द मय कहा जाता है। क्यों?—इसलिए कि वह सरस है, प्रेम मय है। श्रुति कहती है—"रसोवैसः" अर्थात्—वह परमात्मा रस मय है। भक्ति द्वारा-प्रेम द्वारा-परमात्मा को प्राप्त करना संभव बताया गया है। निस्संदेह जो वस्तु जैसी हो उसको उसी प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। परमात्मा दीनबन्धु करुणासिन्धु, रसिक बिहारी, प्रेम का अवतार, दया निधान, भक्त वत्सल है। उसे प्राप्य करने के लिए अपने अन्दर वैसी ही लचीली, कोमल, स्निग्ध, सरस भावनाएं पैदा करनी पड़ती हैं। भगवान भक्ति के वश में है, जिनका हृदय कोमल है, भावुक है, परमात्मा उनसे दूर नहीं हैं।

आप अपने हृदय को कोमल, द्रवित, पसीजने वाला, दयालु, प्रेमी और सरस बनाइए। संसार के पदार्थों में जो सरसता का सौन्दर्य का अपार भण्डार भरा हुआ है उसे ढूँढना और प्राप्त करना सीखिए। अपनी भावनाओं को जब आप कोमल बना लेते हैं तो आपके अपने चारों ओर अमृत

झरता हुआ अनुभव होने लगता है। जड़ वस्तुओं पर दृष्टि डालिए हर एक वस्तु अपने २ ढंग की अनूठी है, वह अपने कलाकार की अमर कीर्ति का अपनी मूकवाणी द्वारा बड़ी ही भावुक भाषा में वर्णन कर रही है। मखमल सी घास, दूध के फेन से उज्वल नदी नाले, हँसते हुए पुष्प, खिलौनों से सुन्दर कीट पतंग, माता सी दयालु गौयें, भाई से साथी बैल, वफादार सेवक से घोड़े, स्वामिभक्त कुत्ते, जापानी खिलौनों से चलते फिरते पक्षी, आप अपने चारों ओर देख सकते हैं। सिनेमा की सी चलती बोलती तस्वीरें सब तरफ घूम रही हैं, नाटक का सा अभिनव स्थान स्थान पर होरहा है। प्रकृति के कोमल दृश्यों का कवित्व मय भावुकता के साथ यदि आप निरीक्षण करें तो सर्वत्र सौन्दर्य की आजस्र धारायें बहती हुई दिखाई देंगी। तस्वीर सा यह सुन्दर संसार आपके दिल की मुरझाई हुई कली को हरी कर देने की परिपूर्ण क्षमता रखता है। भोले भाले मीठी मीठी बातें करते हुए बालक, प्रेम की प्रतिमायें देवियां, करुणा मय मातृत्व की मूर्तियां मातायें, अनुभव, ज्ञान और शुभ कामनाओं के प्रतीक वृद्धजन, यह सब ईश्वर की ऐसी आनन्दमय विभूतियां हैं जिन्हें देखकर मनुष्य का हृदय कमल के पुष्प के समान खिलजाना चाहिए। पग पग पर आनन्द और उल्लास के ढेर हमारे सामने लगे हुए हैं, इस दिव्य तत्वों के द्वारा हम अपने को रात दिन आनन्द में सराबोर रख सकते हैं, फिर भी हाय! हम कैसे अभागे हैं कि जीवन को दुखशोकों से भरा रखते हैं। मनुष्य अपनी कोमल भावनाओं को जैसे जैसे जागृत करता जाता है वैसे वैसे ही उसे अमृत तत्व का रसास्वादन होने लगता है जिसके लिए सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा इस हाड़ मांस के शरीर में रहने को रजामन्द हुआ है, जिसके लोभ को संवरण न करके उसने मनुष्य शरीर धारण किया है। जीवन की सार्थकता कोमल वृत्तियों की मधुरता का रसास्वादन करने में है।

जो कुछ हूँ-वास्तव में मैं ही हूँ

सिनाई पहाड़ी पर चलते हुए हजरत मूसा एक कुंज में बड़ा प्रकाशवान् तेज देखकर बड़े चकित हुए। क्यों कि उस ज्वाला से कुंज अत्यन्त प्रकाशित होरही थी परन्तु जलती न थी। हजरत उस झाड़ी के निकट पहुंचे और विनय पूर्वक पूछा कि "ऐ चमकने वाले! तुम कौन हो?" उस प्रकाश ने उत्तर दिया कि—"मैं हूँ; जो कुछ हूं-वास्तव में मैं ही हूँ। तुम्हारा विशुद्ध आत्मा ही मैं हूँ।"

हजरत मूसा को यह दिव्य अनुभूति ठीक ही हुई। संसार जैसा कुछ है, हमारा अपना प्रतिबिम्ब ही है। जो कुछ है-वास्तव में अपनापन ही है। जैसा कुछ अपने अन्दर है वैसा ही बाहर भी देखा जा सकता है।

आत्मा प्रकाशवान् है तेजस्वी है, ज्वलन शील है, फिर भी यह झाड़ी-देह-आत्मा के गुण से युक्त नहीं है। देह में बुराई भलाई दोनों हैं, आत्मा इसके अन्दर रहते हुए भी इससे परे है। आत्मा का वह प्रकाश प्रज्वलित है तो भी यह झाड़ी जलती। आत्मा के जो सद्गुण हैं वे शरीर में नहीं पाये जाते। आत्मा पवित्र है, उसकी प्रेरणा भी पवित्र ही होती है, परन्तु शरीर में तो वासनाऐं भी रहती हैं।

आत्मा यथार्थ में पवित्र है। यदि वह पवित्र न होता तो कोई देहधारी इस संसार में सिद्ध, महात्मा या अवतार न हो सकता। वह विश्वास करो कि अपनी वास्तविक आस्तित्व-अहम्-पवित्र है। जो मलिनताऐं हैं वे शरीर की हैं और शरीर को जैसे छोड़ा जा सकता है उसी प्रकार इन मलिनताओं का भी परित्याग किया जा सकता है। अन्तर्मुखी होकर सिनाई की-सत्यता की-पहाड़ी पर चढ़ो तो तुम्हें भी इस देह रूपी झाड़ी में प्रकाशवान आत्मा दिखाई देगा। शरीर में रहता हुआ भी वह इससे पृथक है। वह प्रकाशवान् सत्ता आपसे कहती है कि-"मैंहूं;जो कुछ हूं-वास्तवत में मैं ही हूँ। तुम्हारा विशुद्धआत्मा मैं हूँ।"

सद्व्यवहार का अचूक अस्त्र

(श्री०मंगलचन्द्जी भण्डारी हि०सा०विशारद,अजमेर)

एक राजा ने एक दिन स्वप्न देखा कि कोई परोपकारी साधु उससे कह रहा है कि—"बेटा! कल रात को तुझे एक विषैला सर्प काटेगा और उसके काटने से तेरी मृत्यु हो जायगी। वह सर्प अमुक पेड़ की जड़ में रहता है, पूर्व जन्म की शत्रुता का बदला लेने के लिए वह तुझे काटेगा।"

प्रातःकाल राजा सोकर उठा और स्वप्न की बात पर विचार करने लगा। धर्मात्माओं को अकसर सच्चे ही स्वप्न हुआ करते हैं। राजा धर्मात्मा था इसलिए अपने स्वप्न की सत्यता पर उसे विश्वास था। वह विचार करने लगा कि अब आत्म रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए?

सोचते सोचते राजा इस निर्णय पर पहुँचा कि मधुर व्यवहार से बढ़कर शत्रु को जीतने वाला और कोई हथियार इस पृथ्वी पर नहीं है। उसने सर्प के साथ मधुर व्यवहार करके उसका मन बदल देने का निश्चय किया।

संध्या होते ही राजा ने उस पेड़ की जड़ से लेकर अपनी शय्या तक फूलों का बिछौना बिछवा दिया, सुगंधित जलों का छिड़काव करवाया, मीठे दूध के कटोरे जगह जगह रखवा दिये और सेवकों से कह दिया कि रात को जब सर्प निकले तो कोई उसे किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने या छेड़ छाड़ करने का प्रयत्न न करे।

रात को ठीक बारह बजे सर्प अपनी बाँबी में से फुसकारता हुआ निकला और राजा के महल की तरफ चल दिया। वह जैसे जैसे आगे बढ़ता था वैसे ही वैसे उसे अपने लिए की गई स्वागत व्यवस्था को देख देखकर आनन्द होता था। कोमल बिछौने पर लेटता हुआ मनभावनी सुगंध का रसास्वादन करता हुआ स्थान स्थान पर मीठा दूध पीता हुआ आगे बढ़ता था। क्रोध के स्थान पर संतोष और प्रसन्नता के भाव उसमें बढ़ने लगे।

जैसे जैसे वह आगे चलता था वैसे ही वैसे उसका क्रोध कम होता गया। राजमहल में जब वह प्रवेश करने लगा तो देखा कि प्रहरी और द्वारपाल सशस्त्र खड़े हैं परन्तु उसे जरा भी हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं करते। यह असाधारण सौजन्य सर्प के मनमें गढ़ गया, सद्व्यवहार नम्रता, मधुरता, के जादू ने उसे मन्त्र मुग्ध कर लिया, वह राजा को काटने चला था परन्तु अब उसके लिए अपना कार्य असंभव होगया। हानि पहुँचाने के लिए आने वाले शत्रु के साथ जिसका ऐसा मधुर व्यवहार है, उस धर्मात्मा राजा को काटूँ तो किस प्रकार काटूँ? यह प्रश्न उससे हल न होसका। राजा के पलंग तक जाने तक सर्प का निश्चय पूर्ण रूप से बदल गया।

सर्प के आगमन की राजा प्रतीक्षा कर रहा था। नियत समय से कुछ बिलम्ब में वह पहुँचा। सर्प ने राजा से कहा—"हे राजन्! मैं तुम्हें काटकर अपना पूर्व जन्म का बदला चुकाने आया था, परन्तु तुम्हारे सौजन्य और सद्व्यवहार ने मुझे परास्त कर दिया। अब मैं तुम्हारा शत्रु नहीं मित्र हूँ। मित्रता के उपहार स्वरूप अपनी बहुमूल्य मणि मैं तुम्हें देरहा हूँ। लो इसे अपने पास रखो।" इतना कहकर और मणि राजा के सामने रख कर सर्प उलटे पांवों अपने घर वापिस चला गया।

यह कहानी सत्य है या असत्य यह हम नहीं जानते, परन्तु इतना जानते हैं कि जिस तथ्य पर इसमें प्रकाश डाला गया है वह पूर्णतः सत्य है। भलमनसाहत और सद्व्यवहार ऐसे प्रबल अस्त्र हैं जिनसे बुरे से बुरे स्वभाव के दुष्ट मनुष्यों को भी परास्त होना पड़ता है। क्रोध, प्रतिहिंसा, दंड देने, बदला चुकाने की नीति से बुराई बढ़ती है। कीचड़ से कीचड़ नहीं धोई जा सकती, बुराई से बुराई का अन्त नहीं किया जासकता। वैर और विरोध को जड़ मूल से मिटादेने का एक मात्र हथियार सद्व्यवहार ही है। यदि हम अपने शत्रुओं के साथ में अच्छा व्यवहार करें तो निस्संदेह उनके वैर भाव को समूल नष्ट करके उन्हें अपना मित्र बना सकते हैं।

चंचलता और उससे मुक्ति के उपाय।

डाक्टर रामचरण महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्०

क्या तुमने कभी चुपचाप बैठकर अपने मन की उछलकूद, कलाबाजियों, संघर्षों पर विचार किया है। क्षणभर के लिए अपनी मानसिक विचारधारा को रोक कर मन की उड़ान पर चिंतन करो। तुम्हें ज्ञात होगा कि वृक्षों की शाखाओं पर इधर से उधर कूदने वाले चंचल बन्दर की तरह तुम्हारा मन कभी इधर कभी उधर निरंतर भाग दौड़ में संलग्न है। कुछ न कुछ उधेड़बुन कर ही रहा है। तुम इसे किसी विशिष्ट कार्य में एकाग्र करना चाहते हो यह किंचित् काल पश्चात् भाग खड़ा होता है। तुम बारंबार खींचकर इसे एक विषय पर लगाते हो पर यह भाग भाग जाता है। इस चंचलता के कारण तुम मानसिक शक्तियों को केन्द्रीभूत नहीं कर पाते। वे विश्रृंखल बनी हैं। इसी कारण तुम साधन पथ में अग्रसर नहीं हो पाते।

चंचल व्यक्ति के मन का दैनिक लेखा लिखा जाय तो वास्तव में अत्यन्त मनोरंजक होगा। प्रातः से सायं तक अनेक प्रलाभन, तृष्णाएँ, विचार, भावनाएँ आपस में टक्कर मारती हुई उपलब्ध होंगी। अन्तर्द्वन्द उद्वेग उत्पन्न करता है और मनुष्य के अन्तःकरण को सदैव क्षुब्ध बनाये रहता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं अपना स्वामी नहीं होता प्रत्युत समय समय पर आने वाली मानसिक वृत्तियों का गुलाम होता है। वह कभी एक बात करने का निश्चय करता है, कुछ देर पश्चात् उसे अधूरा छोड़ दूसरा कार्य प्रारम्भ करता है। उसे भी मध्य में छोड़ किसी तृतीय में उलझ जाता है।

जो व्यक्ति चंचलता का दास हो जाता है वह किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर पाता। वह जीवन पर्यन्त अस्त व्यस्त बना रहता है और क्लेश की वृद्धि करता रहता है। उसके उद्देश्य चंचल लहरों की तरह वायु बदलते रहते हैं। उसके संकल्प सदैव परिवर्तित होते रहते हैं। ऐसा व्यक्ति स्वयं अपनी चंचलता का दास है। उसका सदैव पराजय होता है।

हमारे एक मित्र ने प्रारम्भ में डेरी (दूध मक्खन इत्यादि) का व्यापार किया। फिर उस कार्य से जी ऐसा उकताया कि सब कुछ बेच कर एक आटा पीसने की चक्की लगाई। लाभ साधारण था। यदि कुछ दिन ठहरते तो अच्छी आमदनी होने लगती किन्तु कार्य तनिक निम्नश्रेणी का था; छोड़ बैठे और एक बिसाती की फैशनेबिल सी दूकान चला दी। दूकान जमते जमाते आपने सुना कि लोग चूने के भट्टे में बड़ा लाभ कर रहे हैं। आज कल आप दूकान के स्थान पर चूने का भट्टा लगाने की फिक्र में हैं।

तनिक ऐसे व्यक्तियों की जीवन-रेखा पर दृष्टि डालिये। वह कैसी टेढ़ीमेढ़ी गतियों में जा रही है। इन्होंने जीवन शक्ति का कितना क्षय किया है। जो व्यक्ति नित्य अपना उद्देश्य बदलता रहता है आज इस सड़क पर तो कल दूसरी पर चलता रहता है, क्या वह कभी अपने निश्चित स्थान पर पहुँच सकता है। क्षण क्षण विचार परिवर्तन करने वाला व्यक्ति जीवन भर रोता है पूरी जिन्दगी इधर से उधर लुढ़कते हुए समाप्त कर देता है। वह सदैव दुःखों के बोझ से दबा रहता है।

जितना तुम अपने उद्देश्य में परिवर्तन करोगे—कभी यह तो कभी वह कार्य करने का प्रयत्न करोगे—उतना ही तुम अधिक असफल रहोगे। खूब निश्चय करके एक पथ ग्रहण करो और फिर उस पर बिना इधर उधर देखे निरन्तर चलते रहो। मन को उसीमें विभोर करो। मन चंचल है, बड़ा शैतान है। तुम्हें इधर उधर लुभाता, भड़काता, अटकाता है। तुम इस कमजोरी को याद रक्खो जिससे धोखा न खा बैठो।

जब कभी तुम्हारा मन विचलित हो, इधर उधर की बातों में बहकने लगे तो उस पर तीव्र दृष्टि रक्खो। तुम्हारे अन्तर्जगत् में जो संघर्ष चलता है वह सब दुष्ट मनोविकारों के कारण होता है।

चंचलता लाने वाले सब मनोविकार मनुष्य की सामर्थ्य को क्षीण करने वाले विषैले पदार्थ हैं। चांचलता से मुक्त होने का सुगम उपाय यह है कि हमें अपने मन तथा विचारों का स्वामी बनना सीखना चाहिए। गुप्त रूप से मनमें कहना चाहिए कि "मैं सदैव शान्त स्थिर और दृढ़ रहने वाला व्यक्ति हूँ। मैं छोटे बच्चों की तरह चित्त को चलायमान नहीं करता एक पुष्प से दूसरे पुष्पों पर विहार करती हुई तितली की तरह मैं क्षण क्षण विचलित नहीं होता। मैं चपल नहीं हूं प्रत्युत पर्वत के सदृश दृढ़ हूं, स्थिर हूं, एक निष्ठ हूं। मेरे संकल्पों, विचारों एवं मानसिक क्रियाओं में परस्पर मेल है। वे सब लक्ष पर केन्द्रित हैं। इधर उधर बिखरे नहीं हैं। मुझे एकाग्रता के मार्ग से कोई विचलित नहीं कर सकता। मैं उद्वेग के वशीभूत हो कठिनाइयों से व्यग्र नहीं हो जाता। मैं तो श्रेष्ठ पुरुष हूं। अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता अनन्त स्थिरता का भण्डार हूं। मैं शान्त; स्थिर और दृढ़ हूं, फिर मेरा मन क्यों कर विचलित हो सकता है। कठिनाइयों, प्रलोभनों, आपत्तियों में मुझे विचलित करने की कदापि सामर्थ्य नहीं है क्यों कि मैं तो परम शक्तिशाली आत्मा हूं।"

उक्त लिखित संदेश को श्रद्धापूर्वक दोहराओ। बार बार कहते रहो। स्थिरता, दृढ़ता और अचलता की भावना पर चित्त एकाग्र करने से अनेकों की चांचलता से मुक्ति हुई है। जब स्थिरता की विचार-धारा पर मन आरुढ़ किया जाता है तो मन बहुत कुछ एकाग्रता लाभ करने लगता है। दीन हीन मानसिक क्षेत्र में रहने वालों को पुनः पुनः दृढ़ता के विचारों पर चित्त लगाना चाहिए।

तुम अपने मानसिक केन्द्र में उस योगी का मानस चित्र निर्माण करो जो एकाग्रता की साक्षात् प्रतिमा है। जब यह उत्कृष्ट चित्र तुम्हारे पास रहेगा तो तुम अवश्य तद्रूप ही जाओगे। दृढ़ता से अपने आदर्श पर चित्त एकाग्र करने से अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

बें बें करने से मुख का ग्रास खोजाता है।

(श्री० स्विट मार्सडन)

अंग्रेजी की एक कहावत है कि "मेंढ़ा जितनी बार बें बें करता है वह उतनी ही बार अपने मुँह के ग्रास खो देता है।" यह बात उन लोगों पर लागू होती है जो अपने भाग्य को दोष दिया करते हैं, अपनी अयोग्यता और दीनता का रोना रोया करते हैं। जितनी ही बार ऐसे दुर्बलता सूचक विचार किये जाते हैं उतना ही उनके संस्कार मन पर मजबूती से जमते हैं और कार्य कारिणी शक्ति में घटोतरी होती जाती है।

विचारों में एक प्रकार की चुम्बक शक्ति है जो अपने समान पदार्थों को आकर्षित करती है। अगर आप दीनता, दुर्भाग्य और आधिव्याधि के विचारों में डूबे रहें तो यही चीजें किसी न किसी प्रकार प्राप्त हो जावेंगी। यह हो नहीं सकता कि जैसे कुछ आप विचार करें उनके विपरीत परिस्थितियां प्राप्त हों। विचार बीज है और परिस्थिति उसका फल है।

यात्री का मुँह जिधर होता है, उधर ही उसकी यात्रा बढ़ती जाती है। यदि कायरता और दरिद्रता की ओर आपका मुँह है तो इसी दिशा में लगातार बढ़ते जाओगे। आशंकायें अक्सर मूर्तिमान हो जाती हैं, जिन्हें असफलता की, विपत्ति की, तङ्गी की आशंका लगी रहती है देखा गया कि अक्सर वैसी ही परिस्थितियां उनके सामने आखड़ी होती हैं। इसके विपरीत साहसी और आत्म विश्वासी लोग निरंतर विजय के पथ पर बढ़ते चले जाते हैं।

कमजोरी, दुर्भाग्य और आशंका पूर्ण बुरे विचारों को मनमें मत आने दो इनसे लाभ कुछ नहीं हानि अधिक है। स्मरण रखिए मेंढ़ा कितनी बार बेंबें करेगा उतनी ही बार अपने मुख का ग्रास खोवेगा। आप जितना ही दुर्भाग्य का रोना रोवेंगे उतनी

अपने अन्तरंग सदस्यों से !

गत अङ्क में ' ज्ञानयोग की एक सुलभ साधना ' शीर्षक लेख छपा था। हर्ष की बात है कि उस ओर अखण्ड-ज्योति के पाठकों ने बहुत ही दिलचस्पी ली है। हमारा अनुमान था कि वर्तमान विषम समय की निजी कठिनाइयों और समस्याओं के कारण पाठक बहुत थोड़ी संख्या में इधर ध्यान देंगे। परन्तु आशा से कई गुनी संकल्प सूचनाऐं आजाने पर हमने जाना कि कर्तव्य, परमार्थ, आध्यात्मिकता और सत्य की लगन बड़े तीव्र वेग से बढ़ रही है। भगवान अब अधर्म का भार इस पृथ्वी पर से हटाकर धर्म की स्थापना मानव हृदयों में कर रहे हैं।

"अपने विचार और कर्मों को विवेक पूर्ण-धर्ममय-बनाओ।" संक्षेप इतना ही सार उस गत अंक वाले लेख का था। उसमें कहा गया था कि-"आप विवेक शीलता को अपनी प्रधान नीति बना लीजिए और आत्मोन्नति-परमार्थ साधना-के लिए यथा संभव निरन्तर प्रयत्न करते रहने का संकल्प कीजिए।" उस लम्बे लेख का केवल मात्र इतना सारांश था। जहाँ सामूहिक रूप से संभव हो वहाँ कई व्यक्ति मिलजुल कर कार्य करें जहाँ ऐसा न होसके वहां एक-अकेला-व्यक्ति ही अपने को इस मार्ग पर अग्रसर करे। यह कार्य संचालन की योजना का सार था।

जिन विकसित हृदय महानुभावों ने अपने व्यक्तिगत संकल्प भेजे हैं विवेक शीलता की उन्नति के प्रण किये हैं-उनकी संख्या एक मास में ही इतनी अधिक होगई है जिसे देख हम लोगों का चित्त अत्यन्त ही प्रफुल्लित होता है और दृढ़ विश्वास होता है कि सर्व शक्तिमान प्रभु द्वारा मनुष्य जातिको अज्ञान रूपी दुख दारिद्र से छुटाने के लिए प्रबल प्रेरणा होरही है।

जिन पाठकों ने विवेक के, औचित्य के, मार्ग पर अग्रसर होने के लिए यथा संभव प्रयत्न करते रहने की-लिखित, मौखिक या मौन संकल्प हमारे पास भेजे हैं, उन सब महानुभावों से हमारा अनुरोध है कि वे हर पन्द्रहवें दिन अमावस्या, पूर्णमासी को अपने पन्द्रह दिन की डायरी संक्षेप रूप से हमारे पास भेज दिया करें। इस डायरी में अपने भले, बुरे, उचित, अनुचित, सांसारिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, सभी प्रकार के कार्यों का ब्यौरा होना चाहिए। इस डायरी को हम बहुत ध्यान पूर्वक पढ़कर सूक्ष्म दृष्टि से यह विचार किया करेंगे कि किस दिशा में कितनी उन्नति या अवनति होरही है। निरीक्षण के पश्चात् यह बताया करेंगे कि जीवन को आनन्द मय बनाने के लिए उन्हें किस दिशा में क्या करना चाहिए इस प्रकार अपने एक नियमित तारतम्य स्थापित होजायगा और जीवन निर्माण कार्य में पाठक हमारा भी सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। आध्यात्मिक मार्ग में एक और एक मिलकर दो नहीं वरन् ग्यारह होजाते हैं हमारे सहयोग से जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में संबंधित सज्जनों को निस्संदेह एक महत्व पूर्ण बल प्राप्त होगा।

जो पाठक विवेक शीलता का 'आनन्द मय जीवन बिताने के इच्छुक हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पाक्षिक डायरी लिखकर हमारे पास हर पन्द्रहवें दिन भेजा करें और उत्तर के लिए टिकट रख दिया करें। यह डायरियाँ बिलकुल गुप्त रखी जायँगी, किसी पर इन्हें प्रकट नहीं किया जायगा। हमारे सिवाय इन पत्रों को कोई और नहीं पढ़ता। कम से कम एक वर्ष के लिए तो वे ऐसा निश्चय कर ही लें कि इतने समय तो डायरी भेजा करेंगे और पत्र व्यवहार द्वारा सत्संग विचार-विनियम, एवं पथ प्रदर्शन प्राप्त करेंगे। दिव्य जीवन के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिए विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न मार्गों का अवलम्बन करना होता है। अलग अलग व्यक्तियों की समस्याओं का सुझाव भी अलग अलग होता है। डायरी भेजने और हमारे सुझाव प्राप्त करने की नियमित व्यवस्था द्वारा पाठक उपरोक्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अखंड ज्योति अपने पाठकों की ऐसी सेवा करने के लिए उत्सुक है।

अपनी सुन्दरता बढ़ाइए।

(महात्मा एपिक्टेट्स)

मेरे पास बहुत से तरह तरह की वेष भूषा के जिज्ञासु तत्व ज्ञान की चर्चा सुनने आते हैं। मैं सोचता हूँ कि इनमें से जो गंदे, मैले कुचले, बिखरे बालों वाले, आँखों में कीचड़ भरे हुए आते हैं वे यहाँ न आते तो अच्छा होता। क्योंकि जो लोग मनुष्यता का आरंभिक लक्षण-सौन्दर्य प्रियता-भी नहीं अपना सके हैं उनके लिए तत्वज्ञान की ऊँची बातों का सुनना भले ही सरल हो, पर समझना मुश्किल है।

मैं अपने शिष्यों से कहता हूँ कि तुम सौन्दर्य के उपासक बनो। इसके पीछे और कुछ बनने की सोचना। तत्वज्ञान का सबसे पहला पाठ यह है कि—"भीतर और बाहर से सुन्दर बनो।" पहले बाहर के सौन्दर्य को बढ़ाओ पीछे भीतर की सुन्दरता में प्रवेश करो। किन्तु ध्यान रखो, बाहर की सुन्दरता पर ही अटके रहजाना उचित न होगा, उसके आगे बढ़कर आध्यात्मिक सुन्दरता को प्राप्त करना होगा।

आलसिवाइडिस एक अद्वतीय सुन्दर पुरुष थे, वे महात्मा सुकरात से भेंट करने गये। उनके सौन्दर्य पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सुकरात ने कहा—आलसिवाइडिस! मैं चाहता हूं कि बाहरी सौन्दर्य की तरह तुम्हारा आत्मा भी सुन्दर हो। सत्कार्य और सद्गुणों से तुम्हारा अन्तःकरण इतना स्वच्छ होजाय जिसकी सुन्दरता पर हर एक को मुग्ध होना पड़े, हर एक को प्रशंसक बनना पड़े।

सफाई, स्वच्छता, पवित्रता, कलापूर्ण व्यवस्था का नाम बाहरी सौन्दर्य है और दया, ईमानदारी, नम्रता का नाम भीतरी सौन्दर्य है। मैं बुड्ढा होचलाहूँ, आदि से लेकर अन्त तक तत्वज्ञान के जिज्ञासुओं को मेरा एक ही उपदेश है—वह यह कि—"सुन्दर बनो बाहर और भीतर दोनों दिशाओं से अपना सौन्दर्य बढ़ाओ।"

भविष्य में क्या होगा?

(श्री० रमेश वर्मा विकल, आगरा)

भविष्य में क्या होगा? यह जानने के लिए हम में से हर एक को उत्सुकता होती है। व्यक्तिगत और सामूहिक भविष्य को जानने की प्रबल अकांक्षा मनुष्य को सदा बनी रहती है। इस वृत्ति का अनुचित लाभ उठाने के लिए फलित वर्णन करने वाले ज्योतिषियों और भविष्य वक्ताओं का एक अच्छा खासा गिरोह बन गया है और वह काफी सम्पत्ति इसी बहाने कमालेता है। इस पर भी भविष्य के बारे में कोई निश्चित जानकारी कराने वाला सच्चा माध्यम अभी तक प्रकट नहीं हुआ है और आगे होगा ऐसा आशा भी नहीं की जासकती।

कारण यह है कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। वह अपने भविष्य का निर्माण करने में खुद मुख्तार है। आज के कार्मों के ऊपर कल की परिस्थितियों का उत्पन्न होना निर्भर है। यदि आज हम जागरूक हैं, सजग हैं; प्रयत्न शील है तो निश्चय ही भविष्य आशा जनक है। यदि आज आलस, अकर्मण्यता और अयोग्यता में डूबे हुए हैं तो यह सुनिश्चित है कि भविष्य आज की अपेक्षा भी कहीं बुरा और दुखदायी होगी।

जो जातियां संगठित हैं और आगे बढ़ती हैं वे संसार में अपना यथोचित गौरव प्राप्त करती हैं और जो फूट, आलस्य एवं दुर्गुणों को छाती से चिपकाए बैठी रहती हैं वे दूसरों के प्रभुत्व और शोषण का शिकार बनी रहती हैं। लोग पूछते हैं कि-हमारा भविष्य कैसा है? वर्तमान महासंक्रान्ति काल के पश्चात् हम लोगों की कैसी दशा होगी? मैं कहता हूं कि-आप आज जो कररहे हैं उसे देखिए और समझ लीजिए कि जैसे आपके आजके विचार और कार्य हैं भविष्य का निर्माण उसीके आधार पर होगा। यदि आज आप निचेष्ट पड़े हुए हैं तो कल के लिए कोई

११ दिन का 'कर्मयोग सत्संग'।

एक साथ कई लाभ प्राप्त करने का स्वर्ण सुयोग।

वर्षाऋतु में ब्रज की लता कुंजें इतनी सुन्दर होजाती हैं कि उसके मनोहर प्राकृतिक दृश्य देखते ही बनतेहैं। मुरझाये हुए अन्तःकरणों को बनस्पति की तरह हरा कर देने की इन दृश्यों में क्षमता होती है। इसलिए बहुत सदैव सावन के महीने में ब्रज यात्रा के लिए दूर दूर से लोग आया करते हैं। अनुकूल ऋतु की अनुकूल यात्रा का उत्तम महात्म्य स्वाभाविक ही है। इसी लिए सावन में ब्रज यात्रा का हिन्दू धर्म में बड़ा महात्म्य माना गया है। उन्हीं दिनों झूलों के उत्सव होते हैं। जिनके कारण मथुरा, वृन्द्रावन, गोकुल, गोवर्धन आदि की छटा बहुत मनोहर होजाती है।

अखंडज्योति ने ऐसे उत्तम मनोहर अवसर पर "कर्मयोग-सत्संग" का आयोजन किया है। कर्मयोग का-उच्च उन्नत जीवन बनाने का कला की प्रसार करना, अखंड ज्योति का मिशन है। अपने इसी उद्देश्य को आगन्तुक महानुभावों को हृदयंगम करने का प्रयत्न किया जायगा। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए व्यावहारिक, अनुभूत एवं सरल उपाय की शिक्षा दी जायगी।

सावन सुदी ५ नाग पंचमी तदनुसार ता० २५ जुलाई मंगलवार से यह सत्संग आरम्भ होगा और सावन सुदी १५ पूर्णमासी तदनुसार ४ अगस्त शुक्रवार को यह सत्संग समाप्त होजायगा। कुल ११ दिन यह उत्सव रहेगा। इस अवसर पर उच्चकोटि के विद्वानों और महात्माओं के अमृतमय उपदेशों का लाभ मिलेगा। ब्रज के सभी प्रमुख तीर्थों को देखने के लिए एक पैदल यात्रा होगी। कर्मयोग गुरुकुल की एक महीने की शिक्षा इन ११ दिनों में ही पूरी की जायगी। जो नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करेंगे उन्हें परीक्षा देकर 'कर्मनिष्ठ' की उपाधि प्राप्ति करने की भी सुविधा रहेगी।

जो महानुभाव पूर्ण रूप से अनुशासन में रहने को तैयार हों, नियत कार्यक्रम के अनुसार ही कार्य करें, यहाँ की व्यवस्था में कुछ विघ्न उपस्थित न करें, तपश्चर्या का कार्यक्रम अपना सकें, वे ही पधारने की कृपा करें। जो अपने अन्दर इन बातों का अभाव पावें वे पधारने का कष्ट न करें। आने वाले महानुभाव पूर्व सूचना अवश्य भेजदें, जिससे उनके ठहरने और खाने पीने की व्यवस्था में सहयोग दिया जा सके।

ब्रज की तीर्थ यात्रा, सुन्दर सुरभित प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन, जीवन को लौट पलट कर देने वाला सत्संग, देशाटन का अनुभव, झूलों का उत्सव आदि अनेक लाभों को एक साथ प्राप्त करने का यह स्वर्ण सुयोग है। जिन्हें रुचे और सुविधा हो वे इस सुअवसर को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

नोट—अखण्ड ज्योति कार्यालय, घीयामंडी रोड पर किशोरी रमण गर्ल्स स्कूल के सामने है। स्टेशन से तीन चार आने की सवारी ताँगे वाले लेते हैं।

श्रीराम शर्मा आचार्य,

सम्पादक—अखण्ड ज्योति

' यही तो वह स्थान है '

उत्तरी इङ्गलैण्ड में चैस्टरफील्ड डार्बीशायर नामक एक सुसम्पन्न नगरी है। वहाँ से पाँच छै मील की दूरी पर 'हार्डविकहल' नामक एक उपनगर है। इसमें हार्डविक वंश के धनी मानी जमीदारों का निवास है। इन जमींदारों में कई लखपती कई करोड़पती हैं। वैसे तो वे सभी लोग लक्ष्मी के कृपा पात्र है। यह डार्डनिक हाल वहाँ के ड्यूक ने प्रचुर संपत्ति खर्च करके सन् १५८४ के लगभग बनवाया था। सम्राट् वैरोनेट के वंशधारी ये जमीदार बड़ी २ जागीरों के स्वामी थे और ऐश्वर्य का जीवन बिताने के निमित्त इस अप्सरा पुरी में समोद निवास करते थे।

सर राल्फ एक बड़े भारी जागीरदार थे। इस नगर में वे सबसे बड़े धनी समझे जाते थे। क्योंकि उनका विवाह एक ऐसी युवती से हुआ था जो अद्वतीय रूप सुन्दरी ही न थी वरन् दहेज में अपने पिता के यहाँ से एक बड़ी भारी जागीर लाई थी। सच तो यह है कि पति की अपेक्षा पत्नी की स्वतन्त्र सम्पत्ति कई गुनी अधिक थी। धन और रूपसौन्दर्य के कारण ही नहीं वरन् सद्गुणों के कारण भी पत्नी अपने पति की प्राण बल्लभा बनी हुई थी। धन, स्वास्थ और प्रेम तीनों की प्रचुरता के कारण वह दम्पत्ति स्वर्ग सुख का उपयोग करने लगा। दिन बीतते गये, श्रीमती राल्फ ने एक पुत्र प्रसव किया। उसके जन्मोत्सव का बड़ा भारी उत्सव हुआ। आनन्द की सीमा और अधिक विस्तृत हो गयी। बालक एसिसटन की चांद सी भोली मूर्ति माता पिता के हृदयों में एक गुदगुदी पैदा करने लगी।

प्रकृति के कुछ ऐसे कठोर नियम हैं जिनके अनुसार सुख दुख में परिवर्तन होता ही रहता है। अनुसार राल्फ को भी ऐसी ही विपत्ति सहनी पड़ी। उनकी पत्नी अबोध शिशु को बिलखता छोड़ कर सुरपुर सिधार गई।

वर्षों तक राल्फ विधुर जीवन बिताते रहे उन्होंने बालक के लालन पालन में अधिक ध्यान दिया। पर घटनाचक्र की प्रगति तो देखिये। पड़ोस की एक दरिद्र युवती मिस इथेला से राल्फ की चार आंखें हुई आखिर वह एक दिन पत्नी ही तो बन बैठी। राल्फ ने इस सुन्दरी से विवाह करते समय बड़े बड़े सुख स्वप्न देखे किन्तु कालान्तर में भ्रम साबित हुए। इथेला सुन्दरी तो अवश्य थी पर उसके अन्दर कनक घट में विष रस भरा हुआ था। अपने क्रूर स्वभाव के कारण पति का निरन्तर जी जलाने लगी। यों तो उसके भी एक लड़का हुआ उसका फिलिप नाम रखा गया, फिलिप का जन्मोत्सव भी शाही ठाठ बाठ से हुआ पर पत्नी के दुर्व्यवहार का रोष उसके पुत्र पर उतरा। राल्फ फिलिप को उतना नहीं चाहते थे जितना कि एसिस्टन को। यह भेद भाव इथेला से भी छिपा न रहा। वह मर्माहत सर्पिणी की तरह पति पर सदैव नाना प्रकार के प्रहार करने लगी।

यह सब भी जल्दी ही समाप्त नहीं हुआ। कोई बीस वर्ष योंही बीत गये। इथेला ४० वर्ष की होचुकी थी और राल्फ ६० वर्ष के। एसिस्टन २२ वष का था और फिलिप उससे तीन वर्ष छोटा। राल्फ अपने इस परिवार को छोड़कर परलोक सिधार गये। जागीर का अधिक भाग पूर्व पत्नी का था इसलिए वह कानून की दृष्टि से एसिस्टन को ही मिला। राल्फ की जायदाद दोनों लड़कों को आधी आधी होगई। इस प्रकार फिलिप की अपेक्षा एसिस्टन कोई दस गुना अधिक धनी हुआ।

इथेला और फिलिप से यह सहन नहीं हुआ। ईर्षा से उनका हृदय जला उठा। चांदनी जैसी सुन्दर मिराफिला शिया नामक एक किशोरी के साथ

कर गये थे। यह बालिका इतनी सुन्दर थी कि उसे 'फूलों की रानी' कहकर पुकारा जाता था। फिलिप हसरत भरी निगाहों से उसे देखा करता और उच्छ्वास भर कर रह जाता कि 'हाय! फूलों की रानी' क्या मेरे भाग्य में नहीं है।

इथेला बड़ी ही क्रूर कर्मा थी। उसने पुत्र के मनोभावों को ताड़ लिया और एक बड़ी ही निर्दय मंत्रणा तैयार करली। काँटे को हटाकर सारा सुख सौभाग्य प्राप्त करने के लिए फिलिप व्याकुल हो उठा। एक दिन वह निर्धारित मंत्रणा कार्यरूप में परिणित होगई। दूसरे दिन घोषित कर दिया गया कि एसिस्टन बिना कुछ कहे सुने कहीं चला गया। कहाँ गया? क्यों गया? यह प्रश्न सबके मस्तिष्क में गूँज रहे थे पर उत्तर कुछ नहीं था। मुद्दतों खोज बीन होती रही, पर परिणाम क्या होना था, एसिस्टन कहीं था थोड़े ही जो मिल जाता वह तो अन्तरिक्ष के छोर पर पहुँच चुका था।

ढूंढ़ खोज के बाद जब निराशा होगई तो अदालत ने यह फैसला किया कि ऐसिस्टन की जायदाद फिलिप के नाम कर दी जाय। अपार धन सम्पत्ति का फिलिप स्वामी हुआ। विपत्ति की तरह सम्पत्ति भी अकेली नहीं आती वह भी अपना कुछ उपहार साथ लाती है। फिलिप को एसिस्टन की प्रेमिका फिलिशिया के साथ पाणिग्रहण का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। उसकी सारी मनोकामनाऐं पूर्ण होगई और अधिकारारूढ़ इन्द्र की भांति गर्वोन्मत्त होकर ऐश्वर्य का उपभोग करने लगा।

× × ×

फिलिप को शिकार का बहुत शौक था वह अपनी पत्नी और मित्रों के साथ घोड़ों पर शिकार के लिए जाया करता था। उस दिन भी इसी प्रकार का प्रमोद दिवस था। सब घुड़ सवार एक हिरन के पीछे दौड़े जारहे थे। अचानक फिलिप का ध्यान पीछे की ओर गया उसने देखा कि ऐसिस्टन घोड़े पर बैठा हुआ दौड़ता आरहा है। हैं! ऐसिस्टन!! हां!!! फिलिप के हाथ से घोड़े का लगाम छूट गई। फिलिशिया का ध्यान भी उधर गया वह भी अपने पूर्व प्रेमी को देखकर सन्न रह गई। सवारों को रुकना पड़ा। घोड़े अस्थिर होगये। वे बेतहाशा डर रहे थे। पार्टी के सब लोगों ने देखा कि ऐसिस्टन घोड़े पर सवार है और उंगली का इशारा करके एक जगह को दिखा रहा है—"देखो! यही तो वह जगह है।" फिलिप मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, फिलिशिया थर थर काँप रही थी। साथ के शिकारी कुत्ते उस संकेतित स्थान पर दौड़े और सूँघ सूँघ कर पंजों से खोदने लगे। ऐसिस्टन की छाया मूर्ति वहां से हटी नहीं वरन् बराबर उस स्थान की ओर इशारा करती रही। सवारों को वह स्थान खोद कर देखने के लिए विवश होना पड़ा। देखा तो उसमें ऐसिस्टन की लाश दबी हुई थी। उसको कत्ल करके मारा गया था।

जैसे तैसे सब घर लौटे। झुण्ड के झुण्ड दर्शक उस वन्य प्रदेश में ऐसिस्टन की दबी हुई लाश को देखने पहुँचे। इथेली इस घटना के बाद पागल होगई वह सड़कों में गलियों में चिल्ला चिल्ला कर बताती फिर रही है कि किस प्रकार ऐसिस्टन की निर्दय हत्या उसने की। फिलिप उस मूर्छा से नहीं उठा और एक सप्ताह के भीतर उसकी मृत्यु होगई।

हार्डविक हाल जो एक समय इन्द्र का अखाड़ा बना रहता था आज श्मशान की शान्ति में डूबा हुआ रोरहा है।

आरोग्यता की कुंजी

नाना प्रकार की बीमारियों का एक ही प्रधान कारण है और वह है—कब्ज। आयुर्वेद का मत है कि—

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः।"

अर्थात्—मलों के कुपित होने से ही सब रोग उत्पन्न होते हैं। यदि मल ठीक प्रकार शरीर से बाहर निकलता रहे, उसके रुकने, सड़ने या बिगड़ने का अवसर न आवे तो मनुष्य समस्त बीमारियों से बचा रह सकता है। प्रसिद्ध शरीर शास्त्री ए० बी० स्टाक होम का कथन है कि-"मनुष्य की देह में होने वाली बीमारियों में से एक भी ऐसी नहीं है जिसका प्रधान कारण कब्ज न हो।" यही मत आरोग्य शास्त्र के आचार्य बरनर मेक फेडन का है। उन्होंने लिखा है कि—"सब रोगों का एक ही मूल कारण है और वह है-कब्ज।" ब्रीफ का भी यह अभिप्राय है वह कब्ज को एक प्रकार की 'धीमी मृत्यु' मानता है। आयु को घटाने वाला और देह को भीतर ही भीतर खोखला कर डालने वाला यह रोग बाहर से बहुत छोटा मालूम पड़ता है परन्तु इसके द्वारा होने वाले परिणाम बहुत ही भयंकर और घातक होते हैं। अमेरिका को सरजन कालेज के अध्यक्ष डाक्टर फ्रेंकलिन मार्टिन ने बताया है कि कब्ज के कारण ही पेट में छोटे छोटे जख्मों की बीमारी होती है और इस बीमारी से अमेरिका में १६ फी सैकड़ा आदमी मरते हैं। डाक्टर अरबम्पनाट लेन ने हिसाब लगाकर बताया है कि दुनियाँ में आठ पीछे एक आदमी पेट के छोटे जख्मों में पीड़ित पाया जाता है जिस का खास कारण कब्ज है। उन्होंने अपनी पुस्तक "The Sewage System of the Body" में बड़े गहरे अनुसंधान के आधार पर यह साबित किया है कि पचासों तरह के भयंकर रोग केवल

महात्मा गांधी ने अपना अनुभव प्रकट करते हुए लिखा है कि-"संग्रहणी, अतिसार, अर्श आदि रोगों का कब्ज से बहुत ही घना सम्बन्ध है। जिसका पेट ठीक तरह अन्न को नहीं पचाता उस का शरीर तेज रहित और निर्बल हो जाता है तथा नाना प्रकार के रोग उस पर अपना अधिकार जमाने लगते हैं।" प्रो० मेचनी काफ का कथन है कि जिसके पेट की खराबी रहती है वह लम्बी उम्र तक नहीं जी सकता कोष्ट बद्धता एक ऐसा रोग है जो हर घड़ी चुपके चुपके मनुष्य की आयु को खाता रहता है। संसार के सभी बुद्धिमान व्यक्ति इसी नतीजे पर पहुँच रहे हैं कि बीमारी और कमजोरी का उत्पत्ति स्थान पेट ही है। जब ऐंजन में गड़बड़ी पड़ी तो कारखाने का सारा काम गड़बड़ हो जाता है। पेट की मशीन के बिगड़ते ही देह के दूसरे पुर्जे भी ऐब लाने लगते हैं।

जो कुछ हम खाते हैं वह पेट में जाकर पचता है। पचे हुए भोजन में से सार भाग को शरीर चूसकर रक्त बना लेता है और निकम्मी वस्तुओं को मल मूत्र आदि के द्वारा बाहर निकाल देता है। अगर पाचन ठीक प्रकार न हो तो उसमें से सार भाग को शरीर नहीं खींच सकता। अतएव आवश्यक मात्रा में नया रक्त भी नहीं बनता। रोज हमें शारीरिक या मानसिक परिश्रम करना पड़ता है उसमें रोज रक्त का खर्च होता है। मोटर, रेल, जहाज आदि तेल की ताकत से चलते हैं वैसे ही रक्त की ताकत से शरीर काम करता है। जितना खर्च होता है उतनी आमदनी न हो तो धीरे धीरे दिवाला निकलने लगता है। इसी प्रकार रोज के परिश्रम में जितना रक्त खर्च होता है उतना पेट तैयार न करे तो मनुष्य दिन दिन निर्बल होता जाता है, हड्डी और मांस का संचित खजाना घटता जाता है यह कमजोरी या निर्बलता है। आवश्यक मात्रा में जब रोज रक्त नहीं बनता और खर्च जारी रहता है तो [illegible]

लगता है।

बीमारियों का कारण कमजोरी है क्योंकि जब शरीर में थोड़ा और निर्बल रक्त रह जाता है तो रोग कीटाणुओं के हमले का वह मुकाबिला नहीं कर सकता। हवा, पानी, भोजन, छूत आदि के द्वारा तरह तरह के हजारों किस्म के रोग कीटाणु हर घड़ी हमारे शरीर में पहुँचते रहते हैं। अगर रक्त बलवान है तो उन हानिकारक कीटाणुओं को को लड़ भिड़कर मार डालेगा या बाहर निकाल देगा किन्तु यदि वह कमजोर है तो यह कीटाणु आसानी से देह में अपना कब्जा जमा लेंगे और अपनी वंश वृद्धि करके तरह तरह की बीमारियाँ पैदा कर देंगे। इसके अतिरिक्त बीमारियां पैदा होने का एक कारण यह भी है कि पेट में गया हुआ भोजन जब पचता नहीं, कच्ची हालत में पड़ा रहता है तो वह आंतों में जाकर सड़ने लगता है। हर एक चीज के सड़ने पर एक प्रकार के तेजाब या विष पैदा होते हैं। जैसे सांप के काट लेने पर शरीर के किसी भी अङ्ग में घुसा हुआ विष सारे शरीर में फैल जाता है उसी प्रकार अन्न के सड़ने से पेट में पैदा हुए वे तेजाब और विष भी खून के दौरे के साथ सारे शरीर में फैल जाते हैं, और अपने हानिकारक प्रभाव से तरह तरह के रोग पैदा करते हैं। इस विष को शरीर के जिस अङ्ग में ठहरने को अच्छी जगह मिल जाती है वहीं वह जड़ जमा लेता है। यदि कान में जगह मिली तो कान का दर्द होने लगा, गांठ और जोड़ों में जगह मिली तो गठिया हो गई। परिस्थिति के अनुसार वही विष फोड़ा, और ज्वर, दर्द, लकवा आदि के विभिन्न रूपों में प्रकट होता है।

इस प्रकार यह आसानी से जाना जा सकता है कि (१) रोगों का जो हमला बाहर से होता रहता है उसे रोकने की ताकत न होने या (२) मल के पेट में रुक जाने से उसकी सड़न द्वारा उत्पन्न हुए विष के प्रभाव से रोग उत्पन्न होते हैं।

जीवन संघर्ष

(पं० श्रीरामजी पाठक, टिकारी)

मानव-जीवन संघर्षों से परिपूर्ण है। मनुष्य अपने धार्मिक, राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में अग्रसर होने के लिये कोई न कोई ध्येय अवश्य बना लेता है और इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ती के निमित्त उसे जीवन की लड़ाइयों में भाग लेना पड़ता है। परिवर्तनशील जगत् कहता है कि ऐ प्राणियो! तुम कितने ही कार्य क्यों न करो, तुम्हारे लिये कर्म-परायणता की आवश्यकता मरते दम तक बनी ही रहेगी। मानव गति-हीन अथवा क्रिया हीन नहीं हो सकता। उसकी वर्त्तमान अवस्था स्थायी नहीं है। परिवर्त्तन अवश्य होगा।

आध्यात्मिक विकास तथा जीवन के कंटका-कीर्ण पथ में महत्वपूर्ण सफलता आत्म-संयम से ही होती है। क्षणिक आपदाओं से या क्षणिक असफलताओं से हमें निराश होकर कर्त्तव्य-पथ से विमुख न होना चाहिये। कष्टों के भय से अपनी महत्वाकांक्षा को कुचलना आत्मघात करना है, और जीवन के संघर्षों से भयभीत होकर आत्मघात करना महान् पाप है।

इस संग्राम में जो भीरु हैं, मृत्यु से डरते हैं या जो निराशावादी हैं, वे किसी भी हालत में सफल नहीं हो सकते। महान् उद्देश्यों की पूर्ति में मृत्यु का कोई ख्याल न करते हुए जो वीर पुरुष विजय प्राप्त करता है वही सच्चा कर्मवीर है।

यदि हम में उत्साह और विवेक है तो संसार का कोई भी कार्य असाध्य अथवा दुसाध्य नहीं हो सकता। अपने इस संग्राम में विजयी होने के लिये दृढ़ सफल और निर्भयता की सख्त जरूरत है। जिन परिस्थितियों की कल्पना मात्र से कायर सिहर उठता है, उसी दशा में निर्भय पथिक अग्रसर होते हुए सफलता की सूचना देता है।

सदाचारी व्रत का अधिकारी है

(पं० तुलसीराम शर्मा सितारी)

निजवर्णा श्रमाचार निरतः शुद्धमानसः ।
व्रतेष्वधि कृतोराजन् नन्यथाविफलःश्रमः ॥

अपने वर्णाश्रम के नित्य, नैमित्तक संध्यावंदनादि से युक्त, निर्मल चित्त (कपट रहित) पुरुष व्रत का अधिकारी है अन्यथा श्रम व्यर्थ है।

अलुब्धः सत्यवादीच सर्वभूत हितेरतः ।
व्रतेष्वधि कृतोराजन् नन्यथाविफलःश्रमः ॥

लोभ रहित, सत्यवादी, सबका हितकारी व्रत का अधिकारी है।

श्रद्धावान् पाप भीरुश्च मद दंभविवर्जितः ।
व्रतेष्वधि कृतोराजन् नन्यथाविफलःश्रमः ॥

श्रद्धा (शास्त्र के वचनों में विश्वास) वाला, पाप से बचा हुआ, मद, (मैं महात्मा हूँ धनवान् हूँ मेरी बराबर कोई नहीं) और दंभ (पाखण्ड) से रहित पुरुष व्रत का अधिकारी है अन्यथा (इन गुणों के न होने पर) व्रत करना निष्फल है।

समः सर्वेषु भूतेषु शिवभक्तो जितेन्द्रियः ।
व्रतेष्वधि कृतोराजन् नन्यथाविफलःश्रमः ॥

सब प्राणियों समता (पक्षपात से शून्य) का व्यवहार करता है शिवभक्त, जितेन्द्रिय है ऐसा पुरुष व्रत का अधिकारी है अन्यथाश्रम व्यर्थ है यानी व्रत रहना निष्फल है।

पूर्वनिश्चित्यशास्त्रार्थं यथावत् कर्म कारकः ।
अवेदनिन्दकोधीमानधिकारी व्रतादिषु ॥

शास्त्र द्वारा कर्त्तव्य कर्म निश्चय कर यथावत् करने वाला, वेद शास्त्र की निन्दा न करने वाला, बुद्धिमान् व्रत आदि करने का अधिकारी है।

(हेमाद्रि-व्रतखंडधृत स्कंद पुराण वचन)

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य मकल्पता ।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानिहरि तुष्टये ॥४२॥
(पद्म पु० ४।८४)

अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना (अन्याय से दूसरे का द्रव्य न लेना) ब्रह्मचर्य, निर्मल चित्त (हृदय में ईर्ष्याद्वेष छल कपट न रहना) भगवान की प्रसन्नता के लिए ये मानसिक व्रत हैं।

विवर्जनंह्यकार्याणा मेतत्सत्पुरुष व्रतम् ।
(म० भा० विराट० १४।३६)

द्रौपदी कहती है कि दुराचार का त्याग सत्पुरुषों का व्रत है।

वेद स्वाध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्
अपैशुन्यमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुत्तमम् ॥४३

वेद शास्त्र का अध्ययन, विष्णुभगवान् का कीर्तन, सत्य भाषण, चुगलखोरी न करना ये वाचिक व्रत हैं ॥ ४३ ॥

एक भक्तं तथानक्त मुपवासमयाचितम् ।
इत्येवं कायिकं पुसां व्रत मुक्तं नरेश्वर ॥ ४४

विनामांगे मध्यान्होत्तर दिन रात में एक बार भोजन करना यह कायिक व्रत है ॥ ४४ ॥

पर दार पर द्रव्य पर द्रोह विवर्जनम् ।
रागद्वेष परित्यागो व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥
(बोधसार)

पर स्त्री, परधन, परहिंसा से बचना और राग द्वेष का त्याग यह व्रतों में उत्तम व्रत है।

सात्विक सहायताऐं

इस मास ज्ञान यज्ञ की सहायतार्थ निम्न सहायताऐं प्राप्त हुई हैं। अखंडज्योति इसके लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

१०१) श्री० भीमराव सोलंकी, युद्धसैनिक,
११) श्री० अनराज, जैन मुनीरुद्दीन पलैया,
१०) श्री० दयाशंकरजी पारादान,
५) श्री० शमशेरसिंहजी ढोंढरामऊ,
३) श्री० गंगचरणजी ब्रह्मचारी उमरी,
२) श्री० रघुवरदत्तजी चालसी,
१॥।=) श्री० गुलफामसिंहजी काशीपुर,
१) श्री० बैजनाथप्रसाद साहु, खागा,
१) पं० रामप्यारे शुक्ल, जगन्नाथपुरी,
१) श्री० नोनुप्रसादजी [illegible]री,

गो दुग्ध ही व्यवहार कीजिए।

(श्री० द्वारिकाप्रसादजी गुप्त, गया)

डा० एस० के० आप्टे, मि० वाटसन मालकोम और पैटसन, मि० स्मिथ साहब ऐसे ऐसे अन्वेषकों द्वारा रचित पुस्तकों का मनन करने से पता चलता है कि-"मानव जीवन को स्वस्थ्य, नीरोग मेधावी और पुरुषार्थी बनाने के लिये फलाहार, शाकाहार और मांसाहार आदि जितने भी प्रकार के भोजन हैं, उनमें शाकाहार का स्थान मध्यम होते हुए भी गो-दुग्ध अमृत तुल्य पौष्टिक पेय पदार्थ है। भारत के प्राचीन रसायनतत्व विशेषज्ञों के विश्लेषण द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है, कि जिस प्रकार स्त्री अर्थात् माता का दूध 'बाल जीवन और प्रत्येक ऋतु तथा प्रत्येक दशा में पथ्य योग्य, मधुर, शीतल, हलका, दीपन, पाचन, धातु-वर्द्धक, रुचिकारक, तृप्तिकारक एवं रुधिर विकारों का हरने वाला, पित्तनाशक सात्म्य और जीवन देने वाला होता है। ठीक उसी प्रकार गाय के दूध में रासायनिक पदार्थों की अधिकता होने तथा स्त्रियों की भाँति गर्भ धारण कर ९-१० मास में प्रसव करने के कारण। इससे बढ़ कर शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्रदान करने वाला संसार में कोई दूसरा प्राणी नहीं है और इसके दूध से बढ़कर दूसरा कोई पुष्टिकर पेय पदार्थ नहीं है, क्योंकि यह शीघ्र पचने वाला, रक्तशोधक, शुक्रजनक, शीतल, मीठा रसायन, वमन विरेचन, बस्तिक्रिया के समान ओज बढ़ाने वाला, उन्माद, मूर्च्छा, हृदयरोग, कुष्ट रोग आदि अनेक रोगों से मुक्त कर शरीर को पुष्ट और वर्ण को सुन्दर बनाने वाला है। आधुनिक वैज्ञानिकों में डा० एस० के० आप्टे, पूना कृषि कालेज के प्रोफेसर राय बहादुर डी० एन० सहस्रबुद्धे ने भी अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है, कि गो-दुग्ध मानव समाज के लिये बहुमूल्य पदार्थ तो है ही, बालकों के लिये तो यह अमृत है, क्योंकि बालकों के बौद्धिक-विकाश के लिये स्त्रियों के दूध को छोड़कर संसार में गो-दुग्ध से बढ़कर कोई अन्य पदार्थ नहीं है। कुछ लोग भैंस के दूध को अधिक महत्व देते हैं, किन्तु भैंस के दूध की अपेक्षा गोदुग्ध में चिकनाई, केसीन (दूध की सफेदी) और विटामिन (खाद्य-प्राण) विशेष परिमाण में होते हैं, जिससे बच्चे और बड़े दोनों पर सामान्य रूप से प्रभाव पड़ता है। शरीर की रक्षा अथवा विकाश के लिये खाद्य पदार्थ में विटामिन का होना परमावश्यक है। यह पदार्थ बच्चों के लिये विशेष रूप से उपयोगी है। उनके भोजनों में इसकी अनुपस्थिति होने से उसके शरीर की बनावट खराब और बाढ़ कम हो जाती है। अधिकाँश लोग भैंस का दूध व्यवहार करते हैं, लेकिन इसके दूध में विटामिन और कैसिन कम तथा चिकनाई अधिक होने के कारण बच्चे क्या बड़े भी सुगमता या शीघ्रता से पचा नहीं सकते हैं। बच्चा यदि किसी प्रकार पचा भी ले, तो उसे दस्त का रोग अवश्य हो जायगा। यही नहीं, बल्कि चिकनाई में जो क्षार-नमक (एसिड) का भाग होता है वह शरीर के उस लवण का भाग शोषण कर लेता है जो हड्डियों के निर्माण के लिए अत्यावश्यक है। लवण का भाग सोख लेने के कारण बालकों को सूखे की बीमारी हो जाती है। बाजारों में भैंस का दूध अधिक मात्रा में मिलने से बालकके माता-पिता अपने बच्चों को यही दूध पिलाते हैं, जिसके फल-स्वरूप बालक दस्त रोग से पीड़ित होकर अधिकाधिक संख्या में काल कवलित हो जाते हैं, यदि माता-पिता के सौभाग्य से बच्चा जीवित भी रह गया तो वह नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित रहता है और निर्बल शरीर धारण कर अपना जीवन व्यतीत करता है। ऐसी दशा में यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो बालकों के लिये क्या, मनुष्य मात्र के लिये गो-दुग्ध ही अमृत और सभी अवस्थाओं में व्यवहार करने योग्य है।

कोई उलझन को सुलझा दे !

[श्री अमरनाथसिंह चौहान]

(१)

कौन आह ! जो जीवन की इस उलझन को सुलझा दे ;
मेरी इस असीम जड़ता में नव-नव स्फूर्त्ति जगा दे ?
रे कितना क्रन्दन तड़पन है कितना है उन्माद !
जगतीतल पर संघर्षणमय है कितना विषम विषाद !
मेरे निष्प्रभ नील गगन में आशालोक दिखा दे !
कोई उलझन को सुलझा दे !

(२)

मैं उद्भ्रान्त श्रान्त उन्मत हूँ, मेरा पथ अज्ञात ;
खोज रहा हूं नीरव निशि में अपना स्वर्ण-प्रभात !
दूर देश का पथिक कहां है, जीवन-पथ दिखला दे !
कोई उलझन को सुलझा दे !

(३)

कितना अरे प्रवञ्चनमय है यह निर्मम व्यापार :
आज लांच्छना से परिवेष्टित—है विस्मित संसार !
दुरभिसन्धि से आकुल उर में विस्मृति गान सुना दे !
कोई उलझन को सुलझा दे !

(४)

मेरी अलसाई आंखों की वह प्रतिमा साकार !
कहां छिपी है, किस निर्जन में ले अतीत का प्यार ?
वह स्वप्तिल सुकुमार हृदय का टूटा तार बजा दे !
कोई उलझन को सुलझा दे !

(५)

अन्तर्जग में आज प्रज्वलित विरहानल का ज्वाल—
उठती हैं जीवन में लहरें आज प्रबल उत्ताल !
मेरी नव्य-उमंगों में अब प्रिय अनुराग जगा दे !
कोई उलझन को सुलझा दे !!

प्रकाशक—श्रीराम शर्मा, "अखण्ड-ज्योति" कार्यालय, मथुरा।